श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद्भगवद्गीता चतुर्दशो अध्याय

पार्थ सारथी ने समझाया धर्म -कर्म का ज्ञान,
मानव जीवन सफल बना ले गीता अमृत मान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।

देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।

प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीमद्भगवद्गीतायां(न्)

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

परं(म्) भूयः(फ्) प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानां(ञ्) ज्ञानमुत्तमम् ।

यज्ज्ञात्वा मुनयः(स्) सर्वे, परां(म्) सिद्धिमितो गताः ॥ 1 ॥

श्री भगवान ने कहा - हे अर्जुन! समस्त ज्ञानों में भी सर्वश्रेष्ठ इस परम-ज्ञान को मैं तेरे लिये फिर से कहता हूँ, जिसे जानकर सभी संत-मुनियों ने इस संसार से मुक्त होकर परम-सिद्धि को प्राप्त किया है।

इदं(ञ्) ज्ञानमुपाश्रित्य, मम साधर्म्यमागताः ।

सर्गेऽपि नोपजायन्ते, प्रलये न व्यथन्ति च ॥ 2 ॥

इस ज्ञान में स्थिर होकर वह मनुष्य मेरे जैसे स्वभाव को ही प्राप्त होता है, वह जीव न तो सृष्टि के प्रारम्भ में फिर से उत्पन्न ही होता हैं और न ही प्रलय के समय कभी व्याकुल होता हैं।

मम योनिर्महद्ब्रह्म, तस्मिन्गर्भं(न्) दधाम्यहम् ।

सम्भवः(स्) सर्वभूतानां(न्), ततो भवति भारत ॥ 3 ॥

हे भरतवंशी! मेरी यह आठ तत्वों वाली जड़ प्रकृति ही समस्त वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली योनि है और मैं ही ब्रह्म रूप में चेतन-रूपी बीज को स्थापित करता हूँ, इस जड़-चेतन के संयोग से ही सभी चर-अचर प्राणीयों का जन्म सम्भव होता है।

सर्वयोनिषु कौन्तेय, मूर्तयः(स्) सम्भवन्ति याः ।

तासां(म्) ब्रह्म महद्योनि-रहं(म्) बीजप्रदः(फ्) पिता ॥ 4 ॥

हे कुन्तीपुत्र! समस्त योनियों जो भी शरीर धारण करने वाले प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सभी को धारण करने वाली ही जड़ प्रकृति ही माता है और मैं ही ब्रह्म रूपी बीज को स्थापित करने वाला पिता हूँ।

सत्त्वं(म्) रजस्तम इति, गुणाः(फ्) प्रकृतिसम्भवाः ।

निबध्नन्ति महाबाहो, देहे देहिनमव्ययम्॥ 5 ॥

हे अर्जुन! सात्विक गुण, राजसिक गुण और तामसिक गुण यह तीनों गुण भौतिक प्रकृति से ही उत्पन्न होते हैं और अविनाशी जीवात्मा शरीर में बँध जाते हैं।

तत्र सत्त्वं(न्) निर्मलत्वात्- प्रकाशकमनामयम् ।

सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ 6 ॥

हे निष्पाप अर्जुन! सतोगुण अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक शुद्ध होने के कारण पाप-कर्मों से जीव को मुक्त करके आत्मा को प्रकाशित करने वाला होता है, जिससे जीव सुख और ज्ञान के अहंकार में बँध जाता है।

रजो रागात्मकं(वँ) विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।

तन्निबध्नाति कौन्तेय, कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ 7 ॥

हे कुन्तीपुत्र! रजोगुण को कामनाओं और लोभ के कारण उत्पन्न हुआ समझ, जिसके कारण शरीरधारी जीव सकाम-कर्मों में बँध जाता है।

तमस्त्वज्ञानजं(वँ) विद्धि, मोहनं(म्) सर्वदेहिनाम् ।

प्रमादालस्यनिद्राभिस्- तन्निबध्नाति भारत ॥ 8 ॥

हे भरतवंशी! तमोगुण को शरीर के प्रति मोह के कारण अज्ञान से उत्पन्न हुआ समझ, जिसके कारण जीव प्रमाद , आलस्य और निद्रा द्वारा बँध जाता है।

सत्त्वं(म्) सुखे सञ्जयति, रजः(ख्) कर्मणि भारत ।

ज्ञानमावृत्य तु तमः(फ्), प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ 9 ॥

हे अर्जुन! सतोगुण मनुष्य को सुख में बाँधता है, रजोगुण मनुष्य को सकाम कर्म में बाँधता है और तमोगुण मनुष्य के ज्ञान को ढक कर प्रमाद में बाँधता है।

रजस्तमश्चाभिभूय, सत्त्वं(म्) भवति भारत ।

रजः(स्) सत्त्वं(न्) तमश्चैव, तमः(स्) सत्त्वं(म्) रजस्तथा ॥ 10 ॥

हे भरतवंशी अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण के घटने पर सतोगुण बढ़ता है, सतोगुण और रजोगुण के घटने पर तमोगुण बढ़ता है, इसी प्रकार तमोगुण और सतोगुण के घटने पर तमोगुण बढ़ता है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्- प्रकाश उपजायते ।

ज्ञानं(यँ) यदा तदा विद्याद्- विवृद्धं(म्) सत्त्वमित्युत ॥ 11 ॥

जिस समय इस के शरीर सभी नौ द्वारों में ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है, उस समय सतोगुण विशेष बृद्धि को प्राप्त होता है।

लोभः(फ्) प्रवृत्तिरारम्भः(ख्), कर्मणामशमः(स्) स्पृहा ।

रजस्येतानि जायन्ते, विवृद्धे भरतर्षभ ॥ 12 ॥

हे भरतवंशीयों में श्रेष्ठ! जब रजोगुण विशेष बृद्धि को प्राप्त होता है तब लोभ के उत्पन्न होने कारण फल की इच्छा से कार्यों को करने की प्रवृत्ति और मन की चंचलता के कारण विषय-भोगों को भोगने की अनियन्त्रित इच्छा बढ़ने लगती है।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च, प्रमादो मोह एव च ।

तमस्येतानि जायन्ते, विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ 13 ॥

हे अर्जुन! जब तमोगुण विशेष बृद्धि को प्राप्त होता है तब अज्ञान रूपी अन्धकार, कर्तव्य-कर्मों को न करने की प्रवृत्ति, पागलपन की अवस्था और मोह के कारण न करने योग्य कार्य करने की प्रवृत्ति बढने लगती हैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं(यँ) याति देहभृत् ।

तदोत्तमविदां(लँ) लोका- नमलान्प्रतिपद्यते ॥ 14 ॥

जब कोई मनुष्य सतोगुण की वृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है, तब वह उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल स्वर्ग लोकों को प्राप्त होता है।

रजसि प्रलयं(ङ्) गत्वा, कर्मसङ्गिषु जायते ।

तथा प्रलीनस्तमसि, मूढयोनिषु जायते ॥ 15 ॥

जब कोई मनुष्य रजोगुण की बृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है तब वह सकाम कर्म करने वाले मनुष्यों में जन्म लेता है और उसी प्रकार तमोगुण की बृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त मनुष्य पशु-पक्षियों आदि निम्न योनियों में जन्म लेता है ।

कर्मणः(स्) सुकृतस्याहुः(स्), सात्त्विकं(न्) निर्मलं(म्) फलम् ।

रजसस्तु फलं(न्) दुःख- मज्ञानं(न्) तमसः(फ्) फलम् ॥ 16 ॥

सतोगुण में किये गये कर्म का फल सुख और ज्ञान युक्त निर्मल फल कहा गया है, रजोगुण में किये गये कर्म का फल दुःख कहा गया है और तमोगुण में किये गये कर्म का फल अज्ञान कहा गया है।

सत्त्वात्संज्ञायते ज्ञानं(म्), रजसो लोभ एव च ।

प्रमादमोहौ तमसो, भवतोऽज्ञानमेव च ॥ 17 ॥

सतोगुण से वास्तविक ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से निश्चित रूप से लोभ ही उत्पन्न होता है और तमोगुण से निश्चित रूप से प्रमाद, मोह, अज्ञान ही उत्पन्न होता हैं।

ऊर्ध्व(ङ्) गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ 18 ॥

सतोगुण में स्थित जीव स्वर्ग के उच्च लोकों को जाता हैं, रजोगुण में स्थित जीव मध्य में पृथ्वी-लोक में ही रह जाते हैं और तमोगुण में स्थित जीव पशु आदि नीच योनियों में नरक को प्राप्त होते हैं।

नान्यं(ङ्) गुणेभ्यः(ख्) कर्तारं(यँ), यदा द्रष्टानुपश्यति ।

गुणेभ्यश्च परं(वँ) वेत्ति, मद्भावं(म्) सोऽधिगच्छति ॥ 19 ॥

जब कोई मनुष्य प्रकृति के तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है और स्वयं को दृष्टा रूप से देखता है तब वह प्रकृति के तीनों गुणों से परे स्थित होकर मुझ परमात्मा को जानकर मेरे दिव्य स्वभाव को ही प्राप्त होता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्- देही देहसमुद्भवान् ।

जन्ममृत्युजरादुःखैर्- विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ 20 ॥

जब शरीरधारी जीव प्रकृति के इन तीनों गुणों को पार कर जाता है तब वह जन्म, मृत्यु, बुढापा तथा सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त होकर इसी जीवन में परम-आनन्द स्वरूप अमृत का भोग करता है।

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेता- नतीतो भवति प्रभो ।

किमाचारः(ख्) कथं(ञ्) चैतां(म्)स्-त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ 21 ॥

अर्जुन ने पूछा - हे प्रभु! प्रकृति के तीनों गुणों को पार किया हुआ मनुष्य किन लक्षणों के द्वारा जाना जाता है और उसका आचरण कैसा होता है तथा वह मनुष्य प्रकृति के तीनों गुणों को किस प्रकार से पार कर पाता है ?

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं(ञ्) च प्रवृत्तिं(ञ्) च, मोहमेव च पाण्डव ।

न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि, न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ 22 ॥

श्री भगवान ने कहा - जो मनुष्य ईश्वरीय ज्ञान रूपी प्रकाश तथा कर्म करने में आसक्ति तथा मोह रूपी अज्ञान के बढने पर कभी भी उनसे घृणा नहीं करता है तथा समान भाव में स्थित होकर न तो उनमें प्रवृत ही होता है और न ही उनसे निवृत होने की इच्छा ही करता है।

उदासीनवदासीनो, गुणैर्यो न विचाल्यते ।

गुणा वर्तन्त इत्येव, योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ 23 ॥

जो उदासीन भाव में स्थित रहकर किसी भी गुण के आने-जाने से विचलित नही होता है और गुणों को ही कार्य करते हुए जानकर एक ही भाव में स्थिर रहता है।

समदुःखसुखः(स्) स्वस्थः(स्), समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्-तुल्यनिन्दात्मसं(म्)स्तुतिः ॥ 24 ॥

जो सुख और दुख में समान भाव में स्थित रहता है, जो अपने आत्म-भाव में स्थित रहता है, जो मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण को एक समान समझता है, जिसके लिये न तो कोई प्रिय होता है और न ही कोई अप्रिय होता है, तथा जो निन्दा और स्तुति में अपना धीरज नहीं खोता है।

मानापमानयोस्तुल्यस्- तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।

सर्वारम्भपरित्यागी, गुणातीतः(स्) स उच्यते ॥ 25 ॥

जो मान और अपमान को एक समान समझता है, जो मित्र और शत्रु के पक्ष में समान भाव में रहता है तथा जिसमें सभी कर्मों के करते हुए भी कर्तापन का भाव नही होता है, ऎसे मनुष्य को प्रकृति के गुणों से अतीत कहा जाता है।

मां(ञ्) च योऽव्यभिचारेण, भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान्- ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ 26 ॥

जो मनुष्य हर परिस्थिति में बिना विचलित हुए अनन्य-भाव से मेरी भक्ति में स्थिर रहता है, वह भक्त प्रकृति के तीनों गुणों को अति-शीघ्र पार करके ब्रह्म-पद पर स्थित हो जाता है।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाह- ममृतस्याव्ययस्य च ।

शाश्वतस्य च धर्मस्य, सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ 27 ॥

उस अविनाशी ब्रह्म-पद का मैं ही अमृत स्वरूप, शाश्वत स्वरूप, धर्म स्वरूप और परम-आनन्द स्वरूप एक-मात्र आश्रय हूँ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसं(वँ)वादे

गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥14॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः(श्) शांतिः(श्) शांतिः ॥

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।